International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 11-02-2021, Accepted: 01-03-2021, Published: 21-04-2021
Volume 7, Issue 2, 2021, Page No. 81-83

कबीर के आदर्श समाज की परिकल्पना

दीपाली
शोधार्थी, पीएच.डी. (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
कबीर ने आदर्श समाज की परिकल्पना को पूरा करने के लिए समाज में जातिगत, धर्मगत, कर्मगत एकता की स्थापना के लिए मानव धर्म का प्रचार किया। आधुनिक कहे जाने वाले इस समाज में भी रूढ़िवादी, अंधविश्वासों, धार्मिक वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष भाव वैसे ही हैं, जैसे तब थे बल्कि अब इनका स्वरुप और भी अधिक विकराल होता जा रहा है। भारतीय समाज में दंभ, पाखण्ड, छल-छद्म, कपट, मिथ्याचरण का बोलबाला आज भी बरकरार है। समता और मानव एकता की विरोधी शक्तियां आज भी सक्रिय हैं। वर्ण-भेद और हिंसा को आज भी हम गले लगाये हुए हैं। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य भी भले ही बाहर से प्रकट न हो रहा हो पर भीतर ही भीतर सब कुछ को ख़ाक करने में लगा है जिसका जीवंत उदाहरण मुजफ्फरपुर और दिल्ली में होने वाले सांप्रदायिक दंगे माने जा सकते हैं। कबीर ईर्ष्या, द्वेष धार्मिक पाखंड और जातिगत ऊँच नीच, अभिमान के भाव से रहित पतिव्रता नारी, अनुरक्त भक्त, आचारवान साधू, निरामिष वैष्णव, समदर्शी पंडित, निर्धनता में भी परमात्मा के प्रति आस्थावान, निर्लोभी, शीलवान, कर्मठ, सत्यवादी साधुसेवा आदि से निर्मित समाज को आदर्श समाज की कोटि में रखते हैं। कबीर जीवन को वैयक्तिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक स्तर भी सात्विक बनाने का परामर्श देकर आदर्श समाज की नींव को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करते हुए विकास की दिशा का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

मूलशब्द: आदर्श समाज, धर्म, भक्ति, समाज

प्रस्तावना
मध्यकाल में निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कबीरदास भारतीय धर्म – साधना के इतिहास में ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली कवि के रूप में अवतरित हुए जिन्होनें शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जनजीवन का नायकत्व किया। कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करने वाले और मर्यादा के रक्षक कवि रहे हैं। उन्होंने स्वत: कहा है –

'तुम जिन जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार'

'निज ब्रह्म विचार' भाव वाले कबीर उनके व्यक्तित्व का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है, जहाँ एक ओर कबीर जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज-सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं तो वहीं धर्म-सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और कवि के रूप में भी हमारे भीतर एक अमित छाप छोड़ते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "वे सर से पैर तक मस्त-मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ़, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की भक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे, और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसलिए वे युग प्रवर्तन कर सके।"[1] कबीर का प्रधान लक्ष्य ही पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना रहा है।

कवि के रूप में कबीर जीवन के अत्यंत समीप दिखाई पड़ते हैं। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता है। उनके काव्य का आधार स्वानुभूति है जिसके लिए उनकी स्पष्ट उक्ति है : 'मैं कहता हूँ आँखिन देखि, तू कहता कागद की लेखी।'

कबीर के काव्य पर वेदांत के अद्वैतवाद, नाथपंथियों की अन्तस्साधनात्मक रहस्य-भावना, हठयोग, कुंडलिनी योग, सहज साधना तथा इस्लाम के एकेश्वरवाद आदि इन सभी का प्रभाव दृष्टिगत होता है। कबीर के काव्य संसार में इन्हीं के प्रभावस्वरूप ज्ञान की गंगा बहती है।[2]

कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखंड का बोलबाला था और हिन्दु-मुसलमान के बीच धार्मिक वैमनस्य की खाई बढती जा रही थी। धार्मिक पाखंड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार अपनी ही स्वार्थ की रोटियां धार्मिक उन्माद के चूल्हें पर सेंकने में व्यस्त थे। समाज में पैर पसारती हुई धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन निरंतर बिगड़ता जा रहा था और कुरीतियों तथा कुप्रथाओं की बेल सामाजिक विषमता को बढ़ाती जा रही थी। ऐसी विषम स्थितियों में एक ऐसे व्यक्तित्त्व की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर न सिर्फ निर्भीकता से प्रहार कर सके बल्कि दोनों धर्मों के अनुयायिओं को बिना किसी भेद-भाव की भावना के फटकार सके, कबीर ऐसे ही विशाल चरित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं। समाज में व्याप्त विषमता, आडम्बर,

अत्याचार उन्हें सह्य नहीं थे। इन्होंने निर्भीकता के साथ सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना का प्रयास किया। डॉ. रजनी बाला अग्रवाल के शब्दों में, "महाकवि कबीर ने इस विचित्र सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण में भारतीय समाज को असहाय अवस्था में पाया। न धर्म किसी की रक्षा कर रहा था और न राज्य से ही सही न्याय की आशा बन रही थी। मिलन से भेद करने वाली परिस्थिति ही अधिक प्रबल थी। परिणामस्वरूप उन्होंने राजनीति की अपेक्षा समाजनीति को ही सुधारने का प्रयास किया और उसके लिए उन्होंने विद्रोह एवं सुधार का मार्ग अपनाया।" [3]

रघुबीर सहाय का कथन 'श्रेष्ठ कविता सांस्कृतिक सत्ता-केन्द्रों, आलोचना-तंत्रों से नहीं, बल्कि लोक-जीवन के साहचर्य से पैदा होती है' कबीर और उनके सृजनकर्म को समझने में भी हमारी सहायता करते हैं जहाँ कबीर ने तटस्थ होकर सामाजिक आर्थिक विषमताओं को निहारा था और अपने प्रबल व्यक्तित्व से इन्हें मिटाने का प्रयास करते हुए एकत्व की स्थापना का निश्चय किया था।

मध्यकालीन परिदृश्य में कबीर ऐसे समीक्षक की भूमिका अदा करते हैं जिन्होंने न केवल अपने समय के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों तथा अंतर्विरोधों की गहरी पड़ताल की, बल्कि अपने सटीक और विचारोत्तेजक तर्क के साथ प्रति-आक्रमण की मुद्रा को भी अपनाया। 'बैचेनी' कबीर के चिंतन एवं सृजन की बुनियाद के रूप में हमारे समक्ष आती है जो सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से हाशिये पर जीने को अभिशप्त लोगों के लिए होने वाली बैचेनी है। सुभाष चंद गुप्त के शब्दों में, "कबीर का जीवन दर्शन एक ओर उनकी प्रेमाभक्ति का माध्यम है, तो दूसरी ओर समाज को सत्य का बोध करनेवाला कम्पास यंत्र। ये दोनों आयाम समानांतर रूप में उनकी चिंतन प्रक्रिया और काव्य प्रक्रिया में उपस्थित हैं।"[4] मध्यकाल में कबीर ऐसे कवि हैं जिन्होंने समाज में आर्थिक ढाँचे का महत्त्व समझा और यह विचार किया कि धन ही एक ऐसा साधन है जो समाज की छोटी और बड़ी इकाइयों में विभाजित करता है और भाई-भाई में वैमनस्य एवं असद्व्यवहार का कारण बनता है। कबीर ने समाज में धन की निस्सारता का उद्घोष करते हुए कहा कि,

"राजा शरण छत्रपति सावधान किन होई।
एक दिन ऐसा होइगा सब सु पड़े विछोह।।
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजाण।
भागा ही छुटे नहीं, भरी भरी मारे वान।। "

कबीर ने धर्म के मर्म को आत्मसात करते हुए जनता को दिगभ्रमित करने वाले धर्म के पाखंडियों और तथाकथित धर्मगुरुओं के खिलाफ भी मोर्चा खोला है-

'**जाके संग दस-बीस है, ताको नाम महंथ।**'

इतने कठोर शब्दों का प्रयोग एवं खुली चुनौती कबीर जेसे सहृदय के अंतर्मन में सामाजिक-धार्मिक अंतर्विरोधों तथा विसंगतियों के प्रति उठनेवाली गहरी वेदना तथा विद्रोह का ही परिचायक है।

बीर के यहाँ भक्ति और आन्दोलन एक दूसरे के पूरक के रूप में सामने आती है। उनकी भक्ति उनके सामाजिक विद्रोह की उपज है। जैसे – "जीवत ब्रह्मा को पूजे नहीं, मुर्दा को मेहमान।" हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी कबीर की भक्ति के बारे में लिखा है कि, "कबीर का विद्रोह उनकी धार्मिकता का बाय प्रोडक्ट नहीं है। उनकी जुझारू आध्यात्मिकता उनके सामाजिक विद्रोह से उपजी है।"[5]

वास्तव में देखा जाए तो कबीर एक भक्त संत होते हुए भी अपने समसामयिक सामाजिक जीवन के प्रति अत्यधिक जागरूक रहे थे। समाज में परिव्याप्त नाना प्रकार की कुरीतियों और पाखण्ड आदि पर उन्होंने कठोर प्रहार किये हैं। कबीर ही यह घोषणा करते हैं कि मोक्ष का रास्ता न केवल सवर्णों के घर के सामने से होकर गुजरता है और न केवल शूद्रों के घर के सामने से ही बल्कि यदि मोक्ष का अधिकार सवर्णों को है तो शूद्रों को भी उतना ही है।

कबीर ऐसे व्यक्ति रहे हैं जो समस्याओं से भागने में विश्वास नहीं करते, जूझने में आस्था रखते हैं। उनका व्यक्तित्व अपने बंधन काटने के साथ ही दूसरों के बंधन भी काटने की चिंता में लीन दिखाई पड़ता है –

हाड़ जरे ज्यों लाकरी, केस जरे ज्यों घास।
सब जगत जरता देखि करी भया कबीर उदास।।

यही कारण है कि कबीर ने समकालीन जीवन में परिव्याप्त जातिगत ऊंच-नीच और भेद-भाव की भावना, छुआछूत की भावना, दुराचार की समस्या, मद्यपान और मांस-भक्षण की कुप्रवृतियों आदी पर भी तीव्र प्रहार किये हैं। जिनमें कबीर विभिन्न सामाजिक विकृतियों पर कुठाराघात करते हुए अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देते हैं। कबीर ने निरंतर प्रयास किया है कि सभी धर्मों के लोग परस्पर प्रेम एवं भाईचारे की भावना के साथ मिलकर रहें इसीलिए उन्होंने राम और रहीम की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा, 'दुई जगदीस कहां ते आया। कहूँ कौने भरमाया।।' अर्थात् ईश्वर दो नहीं हो सकते। यह तो लोगों का भ्रम है जो खुदा को परमात्मा से अलग देखते हैं।

छुआछूत की समस्या पर यद्यपि तीव्र कुठाराघात आधुनिक समय में महात्मा गांधी जी द्वारा किया गया परन्तु अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर कबीर तत्कालीन समय में इस विकट समस्या से स्वयं को विलग नहीं रख सके थे और लगातार इस विभाजन को जन्म देने वाले पंडित वर्ण की इस प्रपंच को खड़ा करने के कारण भर्त्सना करते हैं-

"काहे को कीजे पांडे छोटी विचार
छोटाही से अपना संसार
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध
तुम कैसे ब्राहमण पांडे हम कैसे सूद
छोटी छोटी करत तुम्ह ही जाय
तो गुरुवास काय को आये।"

छूआछूत का विरोध करने के साथ ही कबीर ने 'जाति पांति पूछे नहीं कोई, हरी को भजे से हरी को होई।' कहकर जातिगत ऊंच-नीच की भावना पर भी तीव्र प्रहार किया है। एक ओर उन्होंने कटुतापूर्वक ब्राहमण को चुनौती देते हुए यहाँ तक कहा है कि 'जो तू ब्राहमण ब्राह्मणी जाया, आन बाट हैं क्यों नहीं आया।' तो वहीं दूसरी ओर 'साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।' कहकर मानव-मात्र की समानता का प्रचार किया है। कबीर ने 'जाति न पूछों साध की, पूछ लिजियों ज्ञान। मोल करो तलवारी का पड़ी रहन दो म्यान।।' कहकर स्पष्टत: कर्म फल को महत्त्व देने पर बल दिया है क्योंकि जन्म के आधार पर कोई ऊँचा नहीं होता उसके लिए कर्म की उच्चता होना अधिक आवश्यक है।

कबीर दार्शनिक दृष्टि से निराकारोपासक हैं और उनकी उपासना में भी उन्होंने 'साधो सहज समाधि भली।' पर बल दिया है। यही कारण है कि मूर्ति-पूजा, सिर मुंडाने, तिलक- छापा लगाने, माला फेरने आदि धार्मिक आडम्बरों का उन्होंने विरोध किया है। कबीर धर्म के नाम पर होने वाली जीव हिंसा का भी विरोध करते हुए एक ओर शाक्तों को कसाई तक कह डालते हैं तो वहीं दूसरी ओर मुस्लिम धर्म के लोगों को भी कुर्बानी की प्रवृति के लिए निर्भीकता से फटकारते हैं। कबीर की इसी व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष करने वाली शैली पर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि, "व्यंग्य करने में कबीर अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।"[6] विद्यानिवास मिश्र जी भी कहते हैं, "कबीर के सबद का आकाश कुछ ऐसा है, बड़ा तपता है दिन में, बड़ा जड़ाता है रात में। बाहरी व्यवहार में बड़ा निर्मम लगता है, इतना कुछ कटना-छंटना, इतना झरुसना, इतना दाह सहा नहीं जाता पर एकांत की महानिशा में बड़ा शीतल बड़ा मनोहर, सुख के सपने जैसा लगता है। इतना दूर होते हुए भी इतना अपना सा लगता है।"[7] इन शब्दों से "कबीर हिन्दू व मुस्लिम एकता के नायक कहे जा सकते हैं..वे कहते हैं कि मेरे पास हिन्दू होकर तुम्हें नहीं आना है, मुसलमान होकर भी नहीं। मेरे पास आने की एक ही शर्त है – आदमी होना।" (शुकदेव सिंह) यह आदमी होने की शर्त ही कबीर की सामाजिकता का उनके आदर्श समाज का शीर्ष है, शिखर है और प्रतिपाद्य है।

कबीर ने कोई दर्शन नहीं पढ़ा था और न ही धार्मिक ग्रंथों का उन्हें व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त था। वे परिस्थितियों का निरिक्षण करते हुए फिर आत्मचिंतन व सत्संग से निकाले गये निष्कर्षों को काव्य-रूप में जनता तक पहुंचाते रहे हैं। उनका सम्पूर्ण वर्णन 'आंखिन देखि' पर ही आधारित है। "कबीर साहब के समन्वयवाद की आधारशिला परमतत्त्व के केवल, नित्य तथा एक रस होने, उस पर आश्रित बहु-रूपिणी सृष्टि के अस्थिर होने और उसके विविध अंगों के, उनकी मौलिक एकता के कारण एक समान सिद्ध होने पर स्थित है।"[8]

कबीर सत् के प्रेमी रहे हैं। जहाँ सत् है वहीं धर्म है और वहीं कबीर का हृदय है। असत् के साथ कबीर ने कभी समझौता नहीं किया। उनकी आदर्श समाजवादी दृष्टि में समन्वय की स्थिति प्रधान है जहाँ वे ऐसे समाज के निर्माण में लगे थे जिसमें उपास्य एक हो, मत एक हो, आचरण एक हो और सभ्यता-संस्कृति भी एक हो।

'कबीर पतिव्रता नारी, अनुरक्त भक्त, आचारवान साधू, निरामिष वैष्णव, अभिमान से रहित समदर्शी पंडित, निर्धनता में भी परमात्मा के प्रति आस्थावान, निर्लोभी, शीलवान, कर्मठ, सत्यवादी साधुसेवा आदि से निर्मित समाज को आदर्श समाज मानते थे।'

कबीर की सामाजिक चेतना के शीर्ष बिंदु आदर्श समाज में लोभ, खोटापन, विवेकहीनता और परस्पर असहयोग के लिए स्थान नहीं है बल्कि उसमें ऐसे व्यक्तियों का होना है जिनकी कथनी और करनी में समता हो, 'जैसी मुख ते निकसे तैसी चले चाल' और तभी 'साध मिले साहब मिले अंतर रही न रेख, मनसा, वाचा, कर्मणां, साधू साहब एक' वाला एकत्व भाव संभव होगा। कबीर के काव्य में आदर्श समाज का स्वरुप जन-जन की समता से जुड़ा है। जहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव जन्म या कर्म के आधार पर न गिना जाए।

धार्मिक अन्धता, मूढ़धारणा, बुद्धिहीन भक्ति, विवेकहीन आचरण, परम्परा समर्पित मान्यता, मूर्तिपूजा, श्राद्धकर्म, व्यर्थ के व्रत, श्रद्धाहीन तीर्थ भ्रमण, धर्म के क्षेत्र में पारस्परिक विरोध, अशिक्षा, ढोंगी साधुओं के प्रति भक्ति, विषयवासना के प्रति अनुरक्ति, अतिथि उपेक्षा, अधिक अर्जन की प्रवृति, मांस भक्षण आदि जिस समाज में हो, वह समाज कबीर के लिए आदर्श समाज हो ही नहीं सकता। "बल्कि कबीर के लिए परिवार या समाज वह स्वस्थ आसन है, जिसपर आसीन कोई भी व्यक्ति आध्यात्म के संपर्क में बाधा का अनुभव न करे।"[9]

कबीर ने इसी आदर्श समाज की परिकल्पना को पूरा करने के लिए समाज में जातिगत, धर्मगत, कर्मगत एकता की स्थापना के लिए मानव धर्म का प्रचार किया। मानव धर्म का साधारण अर्थ है मानव और मानव की समानता। न कोई बड़ा और न ही कोई छोटा। ब्राहमण और शूद्र के बीच अंतर हो सकता है पर सामाजिक स्तर पर कोई अंतर नहीं होना चाहिए। मानवता को नष्ट करने वाले वाले विचारों, पदार्थों और विधि-विधानों को कबीरदास ने कभी अपनी स्वीकृति नहीं दी। बल्कि विचार और न्याय बुद्धि से सभी समस्याओं का समाधान उन्हें अभीष्ट था। भेदभाव के वे विरोधी तो थे ही, साथ ही वे ऐसे समाज के समर्थक भी थे जिनमें आध्यात्म की पिपासा हो, छल, धोखा, वासना, परम्परा, दुराव, उत्पीड़न और शोषण का पूर्णतः अभाव हो और साथ ही किसी स्तर पर आचरण में कृत्रिमता न हो। सम्पूर्ण समाज सहयोग, सद्भाव और प्रेम का समाज हो| कबीर ने जो अपना रचना संसार रचा, उसमें ज्ञान की पवित्र गंगा बहती है जोकि समाज को सही दशा व दिशा देने वाली है। यही कबीर का आदर्श समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण है।

आज के आधुनिक कहे जाने वाले समाज में भी रूढ़िवादी, अंधविश्वासों, धार्मिक वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष भाव वैसे ही हैं, जैसे तब थे बल्कि अब इनका स्वरुप और भी अधिक विकराल होता जा रहा है। आज भी भारतीय समाज में दंभ, पाखण्ड, छल-छद्म, कपट, मिथ्याचरण का बोलबाला है। समता और मानव एकता की विरोधी शक्तियां आज भी सक्रिय हैं। वर्ण-भेद और हिंसा को आज भी हम गले लगाये हुए हैं। आज की परिस्थितियां कबीर के युग से कम जटिल नहीं हैं। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य भी भले ही बाहर से प्रकट न हो रहा हो

पर भीतर ही भीतर सब कुछ को ख़ाक करने में लगा है जिसका जीवंत उदाहरण मुजफ्फरपुर और दिल्ली में होने वाले सांप्रदायिक दंगे माने जा सकते हैं। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा समाज की ऐसी ही विकृतियों का विरोध किया और उन्हें जड़मूल से उखाड़ फेंकने का प्रयास किया है। वह समाज की एकता के पुजारी और मानव – अखंडता के सच्चे प्रहरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त के बीच जो भ्रम-भेद है उन्होनें उस पर कुठाराघात किया, सामाजिक भेद-भाव की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया, और हिन्दू – मुसलमान जैसे धर्मों में प्रेम की वह सुदृढ़ आधारशिला रखी जिस पर आज की धर्म-निरपेक्ष नीति का जर्जर प्रसाद ही सही, पर खड़ा है। कबीर उस समाजवाद के सशक्त पक्षधर रहे हैं जिसका नारा आज के वातावरण में सर्वत्र गूँज रहा है और जिसे लाने के लिए हर भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

कबीर का काव्य जहाँ एक ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों और कुप्रथाओं का विरोध करते हुए समाज को उसकी बुराइयों से अवगत कराते हुए उससे मुक्ति पाने का उनका सद्परामर्श जहाँ तत्कालीन समाज को स्वच्छ व स्वस्थ मानसिकता के रूप में ढालने में अपनी भूमिका निभाता है वहीं वर्तमान समाज की विसंगतियों के प्रति सचेत करते हुए बदलाव की अनुगूंज भी मुखरित करता है। कबीर नें बाह्याचार मूलक अंधविश्वासों, दकियानूसी एवं अमानवीय मान्यताओं और सड़ी-गली रूढ़ियों की कटु आलोचना कर जीवन को वैयक्तिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक स्तर भी सात्विक बनाने का परामर्श देकर आदर्श समाज की नींव को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करते हुए विकास की दिशा का मार्ग उज्जवलित किया है। जिससे व्यक्ति व समाज का विकास राष्ट्र के विकास को संभव कर सके। वास्तव में यही कबीर का आदर्श समाज है जिसकी अनुगूंज विकृतियों भरे विगलित वर्तमान समाज में भी कबीर-वाणी के नाम से सद्परामर्श देकर चलते हुए मानवतावादी दृष्टि से आदर्श समाजवादी दृष्टि का पथ आलोकित कर राष्ट्रवाद के शीर्ष को दीप्त करने का प्रयास करती है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ; कबीर ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण – 2014 ; पृष्ठ – 134.
2. विश्वनाथ त्रिपाठी ; हिंदी साहित्य का सरल इतिहास ; ओरियंटल ब्लैक्स्वॉन प्राइवेट लिमिटेड ; संस्करण – 2010 ; पृष्ठ - 21.
3. डॉ. रजनी बाला अग्रवाल : संत कवि कबीर का समाज-दर्शन ; खामा पब्लिशर्स ; प्रथम संस्करण - 2007 ; पृष्ठ - 85.
4. सुभाष चाँद गुप्त ; कविकर्म : पुनर्पाठ से गुजरते हुए ; प्रिय साहित्य सदन ; प्रथम प्रकाशन ; पृष्ठ -14.
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी ; कबीर ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण – 2014 ; पृष्ठ – 140.
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी ; कबीर ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण – 2014 ; पृष्ठ – 170.
7. सं. विद्यानिवास मिश्र ; कबीर वचनामृत सार ; प्रभात प्रकाशन ; प्रथम संस्करण ; पृष्ठ – 7.
8. परशुराम चतुर्वेदी ; कबीर साहित्य की परख ; पृ. 110
9. डॉ. रजनी बाला अग्रवाल : संत कवि कबीर का समाज-दर्शन ; खामा पब्लिशर्स ; प्रथम संस्करण - 2007 ; पृ. 199.